

तदा श्रीवसुपालेन पृष्ठा राज्ञी च कारणम्। तं लेखं दर्शयामास सा सती गुणमण्डिता ॥१४॥
 ततस्तेन नरेन्द्रेण वाचकस्य महाक्रुधा। मुण्डनादिखरारोहैः कृतो दण्डस्तु कष्टदः ॥१५॥
 एवमन्यैर्न कर्तव्यं साधुभिस्तु प्रमादतः। सदर्थस्याप्यनर्थत्वं सर्वशास्त्रविचक्षणैः ॥१६॥
 तस्माच्छ्रीजिनभाषितं शुभतरं कीर्तिप्रमोदप्रदं ज्ञानं ज्ञानघनैर्विशुद्धचरणैः सद्भिः सदा सेवितम्।
 युक्त्या भक्तिभरेण निर्मलधियो भव्या भजन्त्यत्र ये तेषां सारसुखं प्रबोधविलसच्छ्रीसंभवं संभवेत् ॥१७॥

इतः कथाकोशे अर्थहीनाख्यानं समाप्तम्।

९५. व्यंजनार्थहीनस्याख्यानम्

विशुद्धकेवलज्ञानं नत्वा श्रीमज्जिनेश्वरम्। व्यंजनार्थप्रहीनस्य प्रवक्ष्येहं कथानकम् ॥१॥
 कुरुजांगलसद्वेशे हस्तिनागपुरे परे। महापद्मोभवद्राजा जिनपादाब्जषट्पदः ॥२॥
 तस्य राज्ञी महासाध्वी पद्मश्री रूपशालिनी। श्रीमज्जिनेन्द्रसद्धर्म-कर्मसन्दोहभाविनी ॥३॥
 तथा सुरम्यदेशे च पोदनाख्यमहापुरे। सिंहनादो महीनाथ-स्तस्योपरि महाक्रुधा ॥४॥
 स श्रीमांश्च महापद्मः पोदनादिपुरं गतः। तत्र श्रीमज्जिनेन्द्राणां महास्तंभसहस्रकम् ॥५॥

के हाथ में उनका लिखा हुआ पत्र देकर कहा—आपके बाँचने वाले ने हमें यही मतलब समझाया था। इसलिए यह समझकर, कि ऐसा करने से राजा साहब का कोई विशेष मतलब होगा मैंने ऐसी व्यवस्था की थी। सुनकर को बड़ा गुस्सा आया। उन्होंने पत्र बाँचने वाले को उसी समय देश निकाले की सजा देकर उसे अपने शहर बाहर करवा दिया। इसलिए बुद्धिमानों को उचित है कि वे लिखने-बाँचने में ऐसा प्रमाद का अर्थ कर अनर्थ न करें ॥१-१६॥

यह विचार कर जो पवित्र आचरण के धारी और ज्ञान जिनका धन है ऐसे सत्पुरुष भगवान् के उपदेश किए हुए, पुण्य के कारण और यश तथा आनन्द को देने वाले ज्ञान-सम्यग्ज्ञान के प्राप्त करने का भक्तिपूर्वक यत्न करेंगे वे अनन्तज्ञानरूपी लक्ष्मी का सर्वोच्च सुख लाभ करेंगे ॥१७॥

९५. व्यंजनहीन अर्थ की कथा

निर्मल केवलज्ञान के धारक श्रीजिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर व्यंजनहीन अर्थ करने वाले की कथा लिखी जाती है ॥१॥

कुरुजांगल देश की राजधानी हस्तिनापुर के राजा महापद्म थे। ये बड़े धर्मात्मा और जिन भगवान् के सच्चे भक्त थे। इनकी रानी का नाम पद्मश्री था। पद्मश्री सरल स्वभाववाली थी, सुन्दरी थी और कर्मों के नाश करने वाले जिनपूजा, दान, व्रत उपवास आदि पुण्यकर्म निरन्तर किया करती थी। मतलब यह कि जिनधर्म पर उसकी बड़ी श्रद्धा थी ॥२-३॥

सुरम्य देश के पोदनपुर का राजा सिंहनाद और महापद्म में कई दिनों की शत्रुता चली आ रही थी। इसलिए मौका पाकर महापद्म ने उस पर चढ़ाई कर दी। पोदनपुर में महापद्म ने एक 'सहस्रकूट'

सहस्रकूटसन्नाम मन्दिरं शर्ममन्दिरम्। दृष्ट्वा सन्तुष्टचेतस्को लसद्धर्मानुरागतः ॥६॥
 ईदृशं श्रीजिनागारं मत्पुरे सौख्यकारणम्। कारयामि जगत्सारं संविचार्येति मानसे ॥७॥
 महास्तंभसहस्रस्य कर्तव्यः संग्रहो ध्रुवम्। इत्युच्चैः प्रेषयामास पत्रकं स्वपुरं प्रति ॥८॥
 वाचितं वाचकेनाशु भ्रान्त्या स्तंभसहस्रकम्। ग्राह्यं चेति तदाकर्ण्य तत्रस्थैर्वेगतो जनैः ॥९॥
 गृहीत्वा स्तंभशब्देन महाच्छागसहस्रकम्। पोषितं बहुयत्नेन हा कष्टं मूढचेष्टितम् ॥१०॥
 ततो राज्ञा समागत्य महापद्मेन धीमता। प्रोक्तं भो यन्मयादिष्टं तन्मे दर्शयथ ध्रुवम् ॥११॥
 दर्शिताश्च जनैश्छागा-स्ततो रुष्टेन भूभुजा। आज्ञाता मारणे लोकास्ततस्तैरिति जल्पितम् ॥१२॥
 किं कुर्मो भो महीनाथ वयं प्रेषणकारिणा। वाचकेन यदादिष्टं तदस्माभिर्विनिर्मितम् ॥१३॥
 तदा तेन प्रकोपेन महापद्मेन भूभुजा। वाचको दण्डितो गाढं प्रमादो न सुखायते ॥१४॥
 एवमन्यैर्न कर्तव्यः प्रमादः साधुभिर्जनैः। ज्ञानध्यानादिसत्कार्ये जैनतत्त्वविचक्षणैः ॥१५॥

नाम से प्रसिद्ध जिनमन्दिर देखा। मन्दिर की हजार खम्भों वाली भव्य और विशाल इमारत देखकर महापद्म बड़े खुश हुए। उनके हृदय में भी धर्मप्रेम का प्रवाह बहा। अपने शहर में भी एक ऐसे ही सुन्दर मन्दिर के बनवाने की इनकी इच्छा हुई तब उसी समय इन्होंने अपनी राजधानी में पत्र लिखा। उसमें इन्होंने लिखा— ॥४-७॥

“बहुत जल्दी बड़े-बड़े एक हजार खम्भे इकट्ठे करना। पत्र बाँचने वाले ने इस भ्रम से पड़ा—
 “महास्तंभसहस्रस्य कर्तव्यः संग्रहो ध्रुवम्” “स्तंभ” शब्द को ‘स्तभ’ समझकर उसने खम्भे की जगह एक हजार बकरोँ को इकट्ठा करने को कहा। ऐसा ही किया गया। तत्काल एक हजार बकरे मँगावाये जाकर वे अच्छे खाने पिला ने द्वारा पाले जाने लगे ॥८-१०॥

जब महाराज लौटकर वापस आए तो उन्होंने अपने कर्मचारियों से पूछा कि मैंने जो आज्ञा की थी, उसकी तामील की गई? उत्तर में उन्होंने ‘जी हाँ’ कहकर उन बकरोँ को महाराजा को दिखलाया। महापद्म देखकर सिर से पैर तक जल उठे। उन्होंने गुस्सा होकर कहा—मैंने तो तुम्हें एक हजार खम्भों को इकट्ठा करने को लिखा था, तुमने वह क्या किया? तुम्हारे इस अविचार की सजा मैं तुम्हें जीवनदण्ड देता हूँ ॥११-१२॥

महापद्म की ऐसी कठोर सजा सुनकर वे बेचारे बड़े घबराये! उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि महाराज, इसमें हमारा तो कुछ दोष नहीं है। हमें तो जैसा पत्र बाँचने वाले ने कहा, वैसा ही हमने किया। महाराज ने तब उसी समय पत्र बाँचने वाले को बुलाकर उसके इस गुरुत्तर अपराध को जैसी चाहिए वैसी सजा की। इसलिए बुद्धिमानों को उचित है कि वे ज्ञान, ध्यान आदि कामों में कभी ऐसा प्रमाद न करें क्योंकि प्रमाद कभी सुख के लिए नहीं होता ॥१३-१५॥

जो सत्पुरुष भगवान् के उपदेश किए पवित्र और पुण्यमय ज्ञान का अभ्यास करेंगे वे फिर

इत्थं श्रीजिनभाषितं शुभतरं ज्ञात्वा सुशास्त्रं बुधैस्त्यक्त्वा मोहविधायकं भयकरं त्रेधा प्रमादं सदा ।
धर्म्यं कर्मणि शर्मकोटिजनके संज्ञातदानादिके भक्त्या श्रीजिनपूजने शुभतरे कार्या मतिः श्रेयसे ॥१६॥

इति कथाकोशे व्यंजनार्थहीनाख्यानं समाप्तम् ।

१६. हीनाधिकाक्षराख्यानम्

नत्वा जिनं जगत्युज्यं केवलज्ञानलोचनम् । हीनाधिकाक्षराख्यानं प्रवक्ष्ये भव्यरञ्जनम् ॥१॥
सुराष्ट्रविषये श्रीमदूर्जयन्तमहागिरौ । श्रीमच्चन्द्रगुहामध्ये जैनतत्त्वाब्धिचन्द्रमाः ॥२॥
धरसेनो महाचार्यो ज्ञात्वा स्तोत्रं स्वजीवितम् । अविच्छित्तिनिमित्तं च शास्त्रस्योच्चैर्विचक्षणः ॥३॥
आन्ध्रदेशे सुविख्याते वेनातटपुरे परे । जिनयात्रासमायातमहाचार्यान्प्रति द्रुतम् ॥४॥
प्राज्ञौ कृतार्थतां प्राप्तौ नूतनौ द्वौ स्थिरौ मुनी । सिद्धान्तोद्धारणे योग्यौ प्रेषणीयौ मदन्तिके ॥५॥
दत्त्वा लेखमिति व्यक्तं स्वकीयं ब्रह्मचारिणम् । प्रेषयामास पूतात्मा जैनधर्मधुरन्धरः ॥६॥
तं लेखं तैः समालोक्य मुनीन्द्रैस्तुष्टमानसैः । तथाभूतौ मुनी भक्तौ प्रोल्लसद्भर्मरागिणौ ॥७॥
पुष्पदन्ताख्यभूतादिबलिसंज्ञौ गुणोज्ज्वलौ । प्रेषितौ परया भक्त्या सिद्धान्तोद्धारणे क्षमौ ॥८॥

मोह उत्पन्न करने वाले प्रमाद को न कर सुख देने वाले जिनपूजा, दान, व्रत, उपवासादि धार्मिक कामों में अपनी बुद्धि को लगाकर केवलज्ञान का अनन्तसुख प्राप्त करेंगे ॥१६॥

१६. हीनाधिक अक्षर की कथा

उन जिन भगवान् को नमस्कार कर, जिनका कि केवलज्ञान एक सर्वोच्च नेत्र की उपमा धारण करने वाला है, न्यूनाधिक अक्षरों से सम्बन्ध रखने वाली धरसेनाचार्य की कथा लिखी जाती है ॥१-२॥

गिरनार पर्वत की एक गुफा में श्रीधरसेनाचार्य, जो कि जैनधर्मरूप समुद्र के लिए चन्द्रमा की उपमा धारण करने वाले हैं, निवास करते थे। उन्हें निमित्तज्ञान से जान पड़ा कि उनकी उमर बहुत थोड़ी रह गई है। तब उन्हें दो ऐसे विद्यार्थियों की आवश्यकता पड़ी कि जिन्हें वे शास्त्रज्ञान की रक्षा के लिए कुछ अंगादि का ज्ञान करा दें। आचार्य ने तब तीर्थयात्रा के लिए आन्ध्रदेश के वेनातट नगर में आए हुए संघाधिपति महासेनाचार्य को एक पत्र लिखा। उसमें उन्होंने लिखा— ॥३-४॥

“भगवान् महावीर का शासन अचल रहे, उसका सब देशों में प्रचार हो। लिखने का कारण यह है कि कलियुग में अंगादि का ज्ञान यद्यपि न रहेगा तथापि शास्त्रज्ञान की रक्षा हो, इसलिए कृपाकर आप दो ऐसे बुद्धिमान् विद्यार्थियों को मेरे पास भेजिये, जो बुद्धि के बड़े तीक्ष्ण हों, स्थिर हों, सहनशील हों और जैनसिद्धान्त का उद्धार कर सकें ॥५-६॥

आचार्य ने पत्र देकर एक ब्रह्मचारी को महासेनाचार्य के पास भेजा। महासेनाचार्य उस पत्र को पढ़कर बहुत खुश हुए। उन्होंने तब अपने संघ में से पुष्पदन्त और भूतबलि ऐसे दो धर्मप्रेमी और सिद्धान्त के उद्धार करने में समर्थ मुनियों को बड़े प्रेम के साथ धरसेनाचार्य के पास भेजा। ये दोनों